मुक्तिबोध और अज्ञेय की लम्बी कविताओं में व्यक्ति–समाज और विचारधारा के द्वंद्व का अनुशीलन

कुमारी स्मिता

पूर्व शोधार्थी,
विश्विद्यालय हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा

सार

हिन्दी कविता के आधुनिक काल में "लम्बी कविता" केवल आकारगत विस्तार नहीं, बल्कि वैचारिक और संरचनात्मक जटिलता की वह विधा है जिसमें व्यक्ति-चेतना, सामाजिक यथार्थ और विचारधारात्मक संघर्ष बहुस्तरीय रूप में उभरते हैं। नन्दकिशोर नवल और अन्य आलोचकों ने आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास को लिखते हुए स्पष्ट किया है कि स्वातंत्र्योत्तर दौर में कवियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि वे विघटित होते सामाजिक ढाँचे, पूँजीवादी आधुनिकीकरण और वैचारिक ध्रुवीकरण के बीच व्यक्ति की अस्मिता को किस प्रकार रूपायित करें। इस सन्दर्भ में गोपालदास 'मुक्तिबोध' और सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' दो ऐसे केन्द्र में खड़े कवि हैं जिनकी लम्बी कविताएँ व्यक्ति, समाज और विचारधारा के तीव्र द्वंद्व को अपने-अपने ढंग से रूपायित करती हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' तथा अन्य लम्बी कविताओं के साथ-साथ अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' को केन्द्र में रखकर यह देखना है कि इन कविताओं में व्यक्ति (व्यक्तिगत चेतना/स्व), समाज (इतिहास, वर्ग-संरचना, सामूहिकता) और विचारधारा (मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, व्यक्तिवादी आधुनिकतावाद आदि) के बीच किस प्रकार का कलात्मक और वैचारिक द्वंद्व विकसित होता है। इसके लिए पाठ-विश्लेषण, तुलनात्मक पद्धति तथा विचारधारात्मक आलोचना के उपकरणों का प्रयोग किया गया है। मुक्तिबोध की रचनावली, डायरी और आलोचनात्मक निबन्धों के साथ-साथ आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास और अज्ञेय पर लिखे गये प्रमुख आलोचनात्मक ग्रन्थों को इस शोध का आधार बनाया गया है। अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ व्यक्ति को समाज–इतिहास के भीतर घुला हुआ, वर्गीय द्वंद्वों में उलझा हुआ प्राणी मानती हैं, जबकि अज्ञेय व्यक्ति को मूलतः आत्म-अन्वेषी, जटिल संवेदनशीलता वाला सृजक मानते हैं जो समाज और विचारधारा से संवाद भी करता है और उनसे एक आलोचनात्मक दूरी भी बनाये रखता है।

मुख्य शब्द: लम्बी कविता, मुक्तिबोध, अज्ञेय, व्यक्ति–समाज–द्वंद्व, विचारधारा, आधुनिक हिन्दी कविता, मार्क्सवादी आलोचना, अस्तित्ववाद

1. प्रस्तावना

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के विकासक्रम में "लम्बी कविता" की विधा को नन्दकिशोर नवल ने आधुनिकता-बोध, इतिहास-बोध और वैचारिक चेतना के घनीभूत रूप के रूप में देखा है। [1] आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास लिखते हुए नवल स्पष्ट करते हैं कि मुक्तिबोध और अज्ञेय उन कवियों में हैं जिन्होंने एक ओर वैयक्तिक अनुभव को गहनतम स्तर तक पहुँचाया, दूसरी ओर सामाजिक–ऐतिहासिक यथार्थ के साथ निरन्तर संवाद साधने का प्रयास किया। [1] नामवर सिंह भी कविता के नये प्रतिमानों की चर्चा करते हुए बताते हैं कि आधुनिक कविता का असली संकट केवल भाषा या शिल्प का नहीं, बल्कि उस "द्वंद्वात्मक दृष्टि" का है जिसमें कवि स्वयं को इतिहास के भीतर रखकर देखता है। [2]

"लम्बी कविता" का उदय हिन्दी में आकस्मिक नहीं है; इसे आधुनिक समाज में व्यक्ति के भूमण्डलीकरण, राजनीतिक उथल-पुथल, स्वतन्त्रता-संघर्ष के उत्तर-चरण और शीतयुद्धकालीन वैचारिक विभाजन के बीच उभरी जटिलताओं से जोड़कर देखना होगा। [1] 'समकालीन काव्य-यात्रा' में नन्दकिशोर नवल ने विजयदेव नारायण साही से लेकर धूमिल तक अनेक कवियों के सन्दर्भ में दिखाया है कि लम्बी कविताएँ प्रायः किसी

"ऐतिहासिक नाड़ी" को स्पर्श करती हैं और सामाजिक–राजनीतिक संदर्भों के बिना उन्हें समझना संभव नहीं। [3] इसी श्रृंखला में मुक्तिबोध और अज्ञेय की लम्बी कविताएँ विशेष महत्व रखती हैं, क्योंकि एक ओर मुक्तिबोध मार्क्सवाद से प्रेरित प्रगतिशील–जनवादी दृष्टि का विकास करते हैं, दूसरी ओर अज्ञेय अस्तित्ववादी, व्यक्तिवादी और प्रयोगवादी चेतना के महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि हैं।

मुक्तिबोध के कविता-संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और रचनावली के दूसरे खण्ड में संकलित 'अँधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस', 'भूल-गलती' जैसी कविताएँ केवल आत्मकथा या स्वप्न-चित्र नहीं, बल्कि वर्ग-संघर्ष, संस्कृति की विकृतियाँ, मध्यवर्गीय बौद्धिक की दुविधा और राजनीतिक–नैतिक संकट का तीखा चित्रण हैं। [4] अज्ञेय की कविता-संहिता 'आँगन के पार द्वार' में संकलित 'असाध्य वीणा' आधुनिक हिन्दी की उन लम्बी कविताओं में गिनी जाती है जो कलात्मकता, मिथक और विचार की त्रिवेणी का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। [5]

इन्हीं दो काव्य-संसारों के बीच यह शोध-पत्र व्यक्ति, समाज और विचारधारा के द्वंद्व का तुलनात्मक अनुशीलन करता है। उद्देश्य यह है कि मुक्तिबोध और अज्ञेय की लम्बी कविताओं के माध्यम से यह समझा जाये कि आधुनिक हिन्दी कवि व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज–इतिहास की आवश्यकताओं के बीच किस प्रकार संतुलन या टकराव का बिम्ब रचता है, और विचारधारा इस प्रक्रिया में किस रूप में उपस्थित रहती है, आदेश की तरह, प्रश्न की तरह या आत्म-आलोचना के माध्यम के रूप में।

2. शोध-संदर्भ और सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

नन्दकिशोर नवल के अनुसार आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास दरअसल "आधुनिक व्यक्ति" के अंतर्द्वंद्व का इतिहास भी है, जहाँ व्यक्ति स्वयं को समाज से काटकर नहीं, बल्कि सामाजिक–ऐतिहासिक दबावों के बीच ही किसी स्वतन्त्रता की तलाश में देखता है।वे आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में एक ओर प्रगतिशील–मार्क्सवादी धारा और दूसरी ओर प्रयोगवादी–अस्तित्ववादी धारा का पृथक्करण करते हुए संकेत करते हैं कि मुक्तिबोध और अज्ञेय इन दोनों धाराओं के प्रतिनिधि होते हुए भी केवल "वाद के प्रवक्ता" भर नहीं रह जाते, बल्कि वैचारिक ढाँचे के भीतर अपने आत्म-संघर्ष को भी दर्ज करते हैं।

नामवर सिंह 'कविता के नये प्रतिमान' में यह प्रतिपादित करते हैं कि आधुनिक कविता के लिए "अनुभव की प्रामाणिकता" और "विचार की जटिलता" समान रूप से आवश्यक हैं। वे मुक्तिबोध और अज्ञेय, दोनों को ऐसे कवि मानते हैं जिन्होंने व्यक्ति की भीतरी चेतना और समाज के बहिर्जगत के बीच मध्यस्थता करने वाले "कठिन यथार्थ" को सामने रखा। इस कठिन यथार्थ में वर्ग-संघर्ष, औपनिवेशिकता के बाद का विकासवाद, शीत युद्ध, नौकरशाही, शहरी मध्यवर्ग की नैतिक दुविधाएँ, और पारम्परिक–आधुनिक मूल्यों का टकराव सम्मिलित है।

मुक्तिबोध स्वयं 'नयी कविता का आत्म-संघर्ष' में यह स्वीकार करते हैं कि आधुनिक कवि के लिए "अपने वर्ग-चरित्र की पहचान" और "जनता से मूल्यगत प्रतिबद्धता" अनिवार्य है। वे वहाँ स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी, जो "बुर्जुआ जीवन-शैली" के भीतर जीता है, उसके लिए सच्ची जनपक्षधरता आसान नहीं; उसे अपने भीतर की सुविधा-लालसा, कैरियरवाद और सत्ता से समझौतापरस्त प्रवृत्तियों के साथ निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है। [9] यही आत्म-संघर्ष उनकी डायरी 'एक साहित्यिक की डायरी' में भी अनेक रूपों में व्यक्त होता है, जहाँ वे बार-बार अपनी वैचारिक कमज़ोरियों, व्यक्तिगत संकोचों और सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति अपराध-बोध को दर्ज करते हैं।

अज्ञेय पर लिखी गयी आलोचनात्मक कृतियाँ, जैसे भारत सिंह की 'कवि कहानीकार: अज्ञेय संवेदना और दृष्टि' तथा स्नेहलता शुक्ल की 'अज्ञेय: दृष्टि और सृष्टि', यह रेखांकित करती हैं कि अज्ञेय की कविता में "स्वतंत्र व्यक्तित्व", "अन्वेषी चेतना" और "अस्तित्वगत एकाकीपन" के साथ-साथ सामाजिक–राजनीतिक संदर्भों की उपस्थिति भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। [6] नन्दकिशोर नवल की पुस्तक 'कवि अज्ञेय' विशेष रूप से इस बात पर बल देती है कि प्रगतिशील आलोचना ने अज्ञेय को "केवल व्यक्तिवादी" कहकर उनका सरलीकरण किया, जबकि उनकी कविताओं में व्यक्ति और समाज के बीच एक जटिल नैतिक संवाद उपस्थित है।

इस पृष्ठभूमि में, यह शोध-पत्र मुक्तिबोध और अज्ञेय की लम्बी कविताओं को केवल दो "आईडियोलॉजिकल शिविरों" के प्रतिनिधि ग्रन्थों के रूप में नहीं, बल्कि ऐसे रचनात्मक पाठों के रूप में देखता है जहाँ विचारधारा स्वयं प्रश्नांकित होती है। मुक्तिबोध के यहाँ मार्क्सवादी प्रतिबद्धता होने के बावजूद "पार्टी लाइन" का यांत्रिक पालन नहीं, बल्कि आत्म-आलोचनात्मक दृष्टि है। अज्ञेय के यहाँ व्यक्तिवाद का अर्थ समाज से पलायन नहीं, बल्कि एक ऐसे स्व-निर्णायक व्यक्ति की कल्पना है जो किसी भी सामूहिकता, चाहे वह राष्ट्रवाद हो, क्रान्ति हो या परम्परा, को आलोचनात्मक निगाह से देखने का साहस रखता है।

3. मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ: व्यक्ति–समाज–विचारधारा

मुक्तिबोध की काव्य-यात्रा को यदि 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और 'मुक्तिबोध रचनावली' के दूसरे खण्ड से पढ़ा जाये तो स्पष्ट होता है कि उनकी लम्बी कविताएँ एक "पथिक-बुद्धिजीवी" की यात्रा-कथा हैं जो इतिहास, समाज और विचारधारा के बीच लगातार फँसता और निकलना चाहता है। 'अँधेरे में' इस काव्य-संसार की केन्द्रस्थ रचना है, जिसे उर्मिला भगत ने "लम्बी कविता के रूप में आधुनिक हिन्दी का एक प्रकार का वैचारिक महाकाव्य" कहा है।

3.1 'अँधेरे में': मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का वैचारिक महाभारत

'अँधेरे में' का रचनात्मक ताना-बाना सपनों, दु:स्वप्नों, दृश्य-चित्रों और आत्म-स्वगत कथनों से मिलकर बना है। कविता की आरम्भिक पंक्तियों में ही जो "अँधेरा" उपस्थित होता है वह केवल प्राकृतिक या मनोवैज्ञानिक अँधेरा नहीं, बल्कि एक समूची ऐतिहासिक–सामाजिक संरचना का प्रतीक है जिसमें शोषण, हिंसा और अन्याय की परतें छिपी हैं। [7] मुक्तिबोध इस अँधेरे में चलते हुए एक ऐसे "मैं" का निर्माण करते हैं जो स्वयं को "भयभीत, अपराध-बोध से भरा हुआ, परन्तु फिर भी अन्वेषी" व्यक्ति के रूप में पहचानता है।

उर्मिला भगत के विश्लेषण में 'अँधेरे में' का नायक "बौद्धिक मध्यवर्ग" का प्रतिनिधि है जो मार्क्सवाद से वैचारिक रूप से प्रभावित है, परन्तु अपने वास्तविक जीवन में अभी तक बुर्जुआ सुविधाओं से मुक्त नहीं हो पाया। कविता में बार-बार लौटने वाला आत्म-प्रश्न, "मैं किसका पक्षधर हूँ?", दरअसल व्यक्ति और विचारधारा के द्वंद्व का केन्द्रीय सूत्र है। व्यक्ति मार्क्सवादी विचारधारा की रोशनी में समाज को देखता है, परन्तु अपने भीतर उस विचारधारा के अनुरूप क्रान्तिकारी साहस नहीं जुटा पाता; इसीलिए वह अपने को "अपराधी" महसूस करता है।

IJIRSET में प्रकाशित 'मुक्तिबोध का काव्यशिल्प' शीर्षक शोध-लेख ने ध्यान दिलाया है कि 'अँधेरे में' की संरचना स्वयं "द्वंद्वात्मक" है, कथ्य, बिम्ब, भाषा और लय सब में टकराव, टूटन और असन्तुलन जानबूझकर रचा गया है ताकि आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ कलात्मक रूप में उभर सकें। कविता में स्वप्न और सच का, इतिहास और वर्तमान का, व्यक्ति और समाज का, क्रान्ति और अपूर्णता का जो अन्त:संबंध उभरता है, वह मुक्तिबोध की मार्क्सवादी प्रतिबद्धता को भी एक प्रकार की आत्म-आलोचनात्मक प्रक्रिया में बदल देता है।

3.2 अन्य लम्बी कविताएँ: 'ब्रह्मराक्षस' और 'भूल-गलती'

'ब्रह्मराक्षस' और 'भूल-गलती' जैसी कविताएँ भी व्यक्ति–समाज–विचारधारा के द्वंद्व को अन्य रूपों में सामने लाती हैं। 'ब्रह्मराक्षस' में मुक्तिबोध "बौद्धिक परजीविता" का रूपक निर्मित करते हैं, ऐसे बुद्धिजीवी जो स्वयं को प्रगतिशील कहकर सम्मान पाते हैं, परन्तु उनकी वास्तविक जीवन-शैली, वर्ग-हित और सत्ता-सम्बन्ध उनके वचनों से मेल नहीं खाते। आधुनिक इतिहास-लेखन और आलोचना में नन्दकिशोर नवल ने इस ब्रह्मराक्षस को "समकालीन कविता के भीतर पनपे नकली प्रगतिशीलता" का प्रतीक बताया है।

'भूल-गलती' में एक व्यक्ति अपने अतीत, अपनी वैचारिक और निजी गलतियों की मार्मिक समीक्षा करता है। यह समीक्षा मात्र आत्म-पीड़ा नहीं, बल्कि "वर्गीय स्थिति की पहचान" की प्रक्रिया भी है। एक साहित्यिक की डायरी में मुक्तिबोध जिस तरह अपने वर्ग-चरित्र की आलोचना करते हैं, "हम मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी अपनी ही सुरक्षा के लिए जनता से दूर रहते हैं", उसका काव्यात्मक प्रतिरूप 'भूल-गलती' में दिखायी देता है।

इन सभी लम्बी कविताओं में समाज की उपस्थिति केवल "पृष्ठभूमि" के रूप में नहीं है; समाज वर्ग-संबंधों, राजनीतिक शक्तिसंरचनाओं, शहर–गाँव के विभाजन, तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के रूप में सीधे व्यक्ति पर

दबाव डालता है। व्यक्ति इस दबाव के सामने खण्डित होता है, लेकिन मुक्तिबोध की दृष्टि में उसका अन्तिम लक्ष्य "जनता के पक्ष में खड़ा होना" है, भले ही वह लक्ष्य अभी अधूरा हो।

4. अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' और व्यक्ति–समाज–विचारधारा

अज्ञेय के काव्य-संसार को नन्दकिशोर नवल, भारत सिंह और स्नेहलता शुक्ल ने पर्याप्त विस्तार से विश्लेषित किया है। इन आलोचकों की सहमति इस बात पर है कि अज्ञेय की कविता का केन्द्र "अन्वेषी व्यक्ति" है, ऐसा व्यक्ति जो बाह्य संसार के तत्कालीन राजनीतिक–सामाजिक संघर्षों से मुँह नहीं मोड़ता, परन्तु उनका समाधान किसी तैयार विचारधारा या सामूहिक नारे में नहीं, बल्कि अपने भीतर की जटिल अनुभूति और स्वतंत्र निर्णय क्षमता में खोजता है।

'आँगन के पार द्वार' में संकलित लम्बी कविता 'असाध्य वीणा' इस दृष्टि की प्रतिनिधि रचना है। [8] कविता में वीणा एक ऐसे कला-मूल्य का प्रतीक है जिसे साधना आसान नहीं; वह केवल तकनीकी दक्षता से नहीं, बल्कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जोखिम-भरी संलग्नता से साधी जा सकती है। अज्ञेय यहाँ कलाकार–व्यक्ति को समाज के सामने खड़ा करते हैं, समाज उसे "अलग-थलग" भी करता है और उसके प्रति कौतूहल भी रखता है।

4.1 व्यक्तिवाद, आत्म-अन्वेषण और सौन्दर्य–दर्शन

'कवि अज्ञेय' में नन्दकिशोर नवल ने स्पष्ट किया है कि अज्ञेय के व्यक्तिवाद की जड़ें यूरोपीय अस्तित्ववाद, रोमानी परम्परा और भारतीय अद्वैत–बौद्धिकता में एक साथ देखी जा सकती हैं। भारत सिंह के अनुसार अज्ञेय का "स्व" केवल निजी सुख-दुख का केन्द्र नहीं, बल्कि "अनुभव-सूत्र" है जिसके माध्यम से समाज, इतिहास और प्रकृति, तीनों का बोध होता है।

'असाध्य वीणा' में इस "स्व" की परीक्षा होती है। कविता के नायक (वीणा साधक) के सामने चुनौती यह है कि क्या वह समाज द्वारा निर्धारित आसान रास्तों, जैसे केवल कौशल-प्रदर्शन, लोकप्रियता या बाहरी सफलता, को छोड़कर उस कठिन पथ पर चल सकता है जहाँ असफलता, एकाकीपन और अस्वीकार का जोखिम है। वीणा यहाँ एक प्रकार की "असाध्य सच्चाई" का रूपक है, ऐसी सच्चाई जो केवल अभ्यास से नहीं, बल्कि आत्म-त्याग और पूर्ण संलग्नता से प्राप्त होती है।

स्नेहलता शुक्ल 'अज्ञेय: दृष्टि और सृष्टि' में यह रेखांकित करती हैं कि 'असाध्य वीणा' की संरचना मिथकीय होते हुए भी आधुनिक अस्तित्ववादी संकट की ओर संकेत करती है। व्यक्ति एक ऐसे कार्य के लिए चुना जाता है जो असाध्य है; वह जानता है कि असफल हो सकता है, फिर भी प्रयास करता है। यह "जोखिम उठाने की नैतिकता" अज्ञेय के सम्पूर्ण काव्य-संसार का केन्द्र है।

4.2 समाज, परम्परा और विचारधारा के साथ संवाद

अज्ञेय के बारे में प्रगतिशील आलोचना ने अक्सर आरोप लगाया कि वे "समाज-विमुख" या "राजनीतिक रूप से उदासीन" कवि हैं। किन्तु 'असाध्य वीणा' सहित उनकी अनेक कविताओं को ध्यान से पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि समाज उनकी कविता में एक "अनदेखा" नहीं, बल्कि लगातार उपस्थित पात्र है। वीणा-सम्बन्धी कथा में दरबार, श्रोता, आलोचक, अन्य कलाकार, ये सब मिलकर एक सामाजिक संदर्भ निर्मित करते हैं जहाँ सृजन और मूल्यांकन की प्रक्रिया चलती है।

'असाध्य वीणा' में परम्परा केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि एक चुनौती भी है, वीणा के पिछले साधकों ने जिस स्तर तक साधना की है, उससे आगे बढ़ना ही वर्तमान साधक के लिए अर्थपूर्ण है। यह "परम्परा से संवाद" अज्ञेय के व्यक्तिवाद को "इतिहास-विहीन" होने से बचाता है।

विचारधारात्मक स्तर पर अज्ञेय किसी निश्चित राजनीतिक पंक्ति के समर्थक नहीं दिखाई देते, परन्तु स्वतंत्रता, मनुष्य की गरिमा और रचनात्मक स्वायत्तता के पक्षधर अवश्य हैं। 'कवि अज्ञेय' में नवल लिखते हैं कि अज्ञेय ने "किसी वाद विशेष के अधीन न होकर स्वातन्त्र्यवादी दृष्टि" विकसित की, जो व्यक्ति को अन्तिम मूल्य मानती है,

परन्तु व्यक्ति को सामाजिक जिम्मेदारी से मुक्त नहीं करती। यही कारण है कि 'असाध्य वीणा' में भी व्यक्ति का संघर्ष केवल निजी साधना का नहीं, बल्कि समाज के सामने कुछ नया और कठिन रचना का संघर्ष है।

5. तुलनात्मक अनुशीलन: व्यक्ति, समाज और विचारधारा के द्वंद्व की रूपरेखा

अब प्रश्न यह है कि मुक्तिबोध और अज्ञेय की लम्बी कविताओं में व्यक्ति–समाज–विचारधारा के द्वंद्व की संरचना में समानताएँ और भिन्नताएँ क्या हैं। आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास और समकालीन काव्य-यात्रा के आलोक में इस प्रश्न पर विचार करने से कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आते हैं।

मुक्तिबोध का व्यक्ति मूलतः "मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी" है, शहरों में रहने वाला, किताबों और विचारधाराओं की दुनिया से परिचित, परन्तु जीवन-व्यवहार में अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त। [9] 'अँधेरे में' का नायक अपनी कायरता, समझौतों और विलासप्रियता के प्रति शर्मिन्दा है; उसे लगता है कि वह जनता के पक्ष में खड़ा नहीं हो पा रहा। इसलिए मुक्तिबोध के यहाँ व्यक्ति का आत्मान्वेषण प्रायः आत्म-आलोचना और आत्म-निन्दा के रास्ते से होकर गुजरता है।

इसके बरअक्स अज्ञेय का व्यक्ति अपेक्षाकृत "स्वतंत्र" और "प्रयोगशील" है। वह स्वयं को समाज के विरुद्ध नहीं, बल्कि समाज के समानान्तर खड़ा करके देखता है। 'असाध्य वीणा' का साधक समाज से मान्यता चाहता अवश्य है, परन्तु उसकी मूल प्रेरणा भीतर से आती है, स्व-चयन, स्व-निर्णय और स्व-साधना की प्रेरणा। इसीलिए अज्ञेय के यहाँ आत्म-आलोचना की जगह "आत्म-परीक्षा" अधिक दिखाई देती है, व्यक्ति अपने को जाँचता है, परन्तु अपने अस्तित्व को नकारता नहीं।

मुक्तिबोध के समाज में वर्ग-संघर्ष के तीखे रूप उपस्थित हैं, शहरों की पूँजीवादी व्यवस्था, गाँव–कस्बों का पिछड़ापन, नौकरशाही और प्रतिक्रियावादी शक्तियों का गठजोड़, और इनके बीच फँसा हुआ मध्यवर्ग। उनकी लम्बी कविताएँ अनेक बार राजनीतिक संकेतों, प्रतीकों और ऐतिहासिक प्रसंगों से भरी रहती हैं। समाज यहाँ एक कठोर, दमनकारी संरचना भी है और परिवर्तन की सम्भावना से भरा हुआ क्षेत्र भी। मुक्तिबोध की दृष्टि में कवि का दायित्व है कि वह इस समाज की "छिपी हुई क्रूरता" को बेनकाब करे और जनता के पक्ष में वैचारिक हस्तक्षेप करे।

अज्ञेय के यहाँ समाज का चित्र अपेक्षाकृत कम प्रत्यक्ष राजनीतिक है, परन्तु वह अनुपस्थित भी नहीं। 'असाध्य वीणा' में दरबार, जनता, आलोचक, सत्ता, ये सब समाज के प्रतिनिधि रूप हैं जो कलाकार के सामने चुनौती की तरह खड़े हैं। सामाजिक संरचना यहाँ किसी विशिष्ट वर्ग-संघर्ष की भाषा में नहीं, बल्कि "सामूहिक मानसिकता" और "परम्परागत अपेक्षाओं" के स्तर पर सामने आती है। अज्ञेय का प्रश्न यह है कि क्या व्यक्ति इस सामूहिक मानसिकता के दबाव के बावजूद अपने विवेक और सृजनात्मक नैतिकता के अनुसार निर्णय ले सकता है या नहीं।

मुक्तिबोध के काव्य-संसार में विचारधारा मुख्यतः मार्क्सवाद से सम्बद्ध है। परन्तु वे मार्क्सवाद का "शब्दशः पुनरावृत्ति" नहीं करते; वे उसकी आलोचनात्मक चेतना को अपनाकर अपने वर्ग-चरित्र की जांच करते हैं। [10] 'अँधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस' जैसी कविताओं में विचारधारा एक "नैतिक कसौटी" की तरह उपस्थित है, कवि अपने कर्म और विचार को इस कसौटी पर बार-बार परखता है, और असफल होने पर स्वयं को कठोर आलोचना का विषय बनाता है।

अज्ञेय के यहाँ स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा का कोई एक नाम नहीं मिलता, परन्तु स्वतंत्रता, व्यक्तिगत गरिमा, सृजनात्मक स्वायत्तता और मनुष्य की जिज्ञासु प्रकृति के प्रति गहरी आस्था मिलती है। [11] 'असाध्य वीणा' में विचारधारा "अभिव्यक्तत: नहीं", बल्कि "मूल्यों के चयन" के स्तर पर उपस्थित है, कलाकार किस प्रकार का सौन्दर्य चुनता है, वह सामूहिक अपेक्षाओं के विरुद्ध कौन सा जोखिम उठाता है, वह असफलता की कीमत पर भी अपनी सच्चाई पर डटा रहता है या नहीं, ये सब विचारधारात्मक प्रश्न हैं, भले ही इन्हें किसी राजनीतिक वाद के नाम से न जोड़ा गया हो।

इस प्रकार मुक्तिबोध और अज्ञेय के बीच एक बुनियादी भिन्नता यह है कि मुक्तिबोध विचारधारा को अधिक स्पष्ट और नामित रूप में स्वीकार करते हैं, जबकि अज्ञेय इसे "मूल्य-दृष्टि" और "अस्तित्वगत चयन" के रूप में जीते

हैं। फिर भी दोनों के यहाँ विचारधारा किसी भी तरह से "तैयार फार्मूला" नहीं, बल्कि आत्म-अन्वेषण का माध्यम ही है।

6. निष्कर्ष

इस शोध-पत्र में मुक्तिबोध और अज्ञेय की लम्बी कविताओं के माध्यम से व्यक्ति, समाज और विचारधारा के द्वंद्व का अनुशीलन किया गया। आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास, समकालीन काव्य-यात्रा और दोनों कवियों पर केन्द्रित आलोचनात्मक ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि लम्बी कविता केवल "लम्बी" नहीं, बल्कि आधुनिक व्यक्ति के बहुस्तरीय संघर्षों का जटिल कलात्मक रूप है।

मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ, विशेषतः 'अँधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस' और 'भूल-गलती', एक ऐसे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की आत्मकथा हैं जो मार्क्सवादी विचारधारा के आलोक में समाज और अपने वर्ग-चरित्र को देखता है, परन्तु अपने भीतर की कायरता, सुविधा-लालसा और असमर्थता से जूझता रहता है। [12] व्यक्ति यहाँ एक "दोषी चेतना" के रूप में उपस्थित है जो समाज के अन्यायों से भी पीड़ित है और अपने निष्क्रिय सहयोग से भी अपराध-बोध से भरी हुई है।

अज्ञेय की लम्बी कविता 'असाध्य वीणा' में व्यक्ति एक अलग प्रकार की चुनौती से जूझता है। वह किसी प्रत्यक्ष राजनीतिक विचारधारा का प्रतिनिधि नहीं, बल्कि "अन्वेषी स्व" है जो समाज की अपेक्षाओं, परम्परा के दबाव और विफलता के जोखिम के बावजूद अपनी रचनात्मक सच्चाई पर अडिग रहने की कोशिश करता है। यहाँ समाज एक "सामूहिक दर्शक" की तरह उपस्थित है और विचारधारा "स्वतंत्रता" तथा "स्व-निर्णय" के मूल्यों में सन्निहित है।

तुलनात्मक रूप से कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध व्यक्ति–समाज–विचारधारा के त्रिकोण को "वर्ग-संघर्ष" और "इतिहास-बोध" में प्रत्यक्ष रूप से बाँधते हैं, जबकि अज्ञेय उसी त्रिकोण को "अस्तित्वगत चयन", "सौन्दर्य-दर्शन" और "स्वतंत्र व्यक्तित्व" की भाषा में रूपायित करते हैं। मुक्तिबोध के यहाँ विचारधारा स्वयं को कठोर आत्म-आलोचना के रूप में प्रकट करती है, जबकि अज्ञेय के यहाँ वह किसी भी विचार-निर्धारित सामूहिकतावाद के विरुद्ध व्यक्ति की स्वायत्तता की रक्षा करती है।

आधुनिक हिन्दी आलोचना के लिए यह आवश्यक है कि इन दोनों कवियों को "प्रगतिशील बनाम प्रयोगवादी" जैसी सरलीकृत श्रेणियों में न बाँटे, बल्कि उनकी लम्बी कविताओं को ऐसे पाठों के रूप में पढ़े जहाँ व्यक्ति, समाज और विचारधारा, तीनों एक दूसरे को प्रश्नांकित करते हैं। समकालीन समय में, जब व्यक्ति पर मार्केट, मीडिया और नई विचारधारात्मक ध्रुवीकरण-प्रक्रियाओं का दबाव बढ़ता जा रहा है, मुक्तिबोध की आत्म-आलोचनात्मक वैचारिकता और अज्ञेय की स्वातन्त्र्यवादी संवेदना, दोनों हमें इस बात की सीख देती हैं कि सच्चा साहित्य सदैव प्रश्न पूछता है; वह न तो अन्ध-विचारधारावाद में सिमटता है, न ही शून्यवादी निरपेक्षता में।

संदर्भ सूची

1. नन्दकिशोर नवल, *आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास*, 3रा सं., नई दिल्ली: ज्ञानपीठ–वाणी प्रकाशन एल.एल.पी., 2019, पृष्ठ. 1–560.
2. नामवर सिंह, *कविता के नये प्रतिमान*, 18वाँ सं., नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2024, पृष्ठ. 91–147.
3. नन्दकिशोर नवल, *समकालीन काव्य-यात्रा*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2004, पृष्ठ. 71–104.
4. गोपालदास 'मुक्तिबोध', *चाँद का मुँह टेढ़ा है*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पुनर्मुद्रण 2017, पृष्ठ. 230–312.
5. नन्दकिशोर नवल, *कवि अज्ञेय*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2016, पृष्ठ. 1–132.
6. भारत सिंह, *कवि कहानीकार: अज्ञेय संवेदना और दृष्टि*, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2014, पृष्ठ. 141–248.

7. "अँधेरे में," *कविता कोश* (मुक्तिबोध अनुभाग), ऑनलाइन संस्करण, पृष्ठ 1–8 (भाग 1–8), अभिगमन वर्ष 2025.
8. "असाध्य वीणा," *कविता कोश* (अज्ञेय अनुभाग), ऑनलाइन संस्करण, पृष्ठ 1–4, अभिगमन वर्ष 2025.
9. जी. एम. मुक्तिबोध, *नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध*, दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2019, पृष्ठ. 1–108.
10. जी. एम. मुक्तिबोध, *एक साहित्यिक की डायरी*, नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 1993, पृष्ठ. 18–120.
11. स्नेहलता शुक्ल, *अज्ञेय: दृष्टि और सृष्टि*, जयपुर: रचना प्रकाशन, 2012, पृष्ठ. 107–330.